शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

'एक कंठ विषपायी' में मूल्य-संघर्ष

डॉ. पूनम राठी
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
भगिनी निवेदिता कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

रचनाकार एक संवेदनशील होता है। वह समाज का अति महत्वपूर्ण अंग है। समसामयिक परिवेश में जो घटित होते हुए देखता है उसे अपनी सृजनात्मक क्षमता से जोड़कर उसका चित्रण अपनी रचनाओं में करता है। केवल चित्रण कर देना ही उसका ध्येय नहीं है, अपितु उसके द्वारा होने वाले दूरगामी परिणामों से समाज का साक्षात्कार कराना भी उसका उद्देश्य होता है। प्राचीन काल में व्यक्ति विशेष से अधिक समाज महत्वपूर्ण होता था। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक नियमों से बंधा होता था। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों वह आधुनिकता की ओर बढ़ा, उसके व्यक्तित्व को विकास की नई दिशाएं मिली। प्राचीन बंधन ढीले पड़ने लगे और उसमें व्यक्तिस्वातन्त्रय का भाव बढ़ने लगा। जिसके कारण प्राचीन मान्यताओं के स्थान पर आधुनिक विचारधाराओं ने जन्म लिया। फलतः समाज दो श्रेणियों में विभक्त हो गया। एक प्राचीन मूल्यों और प्राचीन परम्पराओं का वाहक तो दूसरा आधुनिक मान्यताओं को स्वीकार कर एक नये चिन्तन और एक नयी विचारधारा की ओर बढ़ने वाला। फलतः इन्हीं विचारधाराओं के मूल्यसंघर्ष से साक्षात करता है 'दुष्यन्त कुमार का काव्य नाटक-'एक कंठ विषपायी'।

शब्द संकेत : *परम्परा, जर्जर रूढ़ियाँ, मर्यादा, देवत्व, शंकर, परिवर्तन, मूल्य-संघर्ष, परम्पराभंजक।*

भूमिका

दुष्यन्त कुमार परिवर्तन को सहज स्वीकार करने वाले ईमानदार अभिव्यक्ति के लेखक हैं। अपने काव्य-संकलन 'जलते हुए वन का बसंत की भूमिका में आत्मावलोकन करते हुए कहते हैं कि "मेरे पास काव्य के मुखौटे नहीं हैं। अन्तरराष्ट्रीय मुद्राएं नहीं हैं और अजनबी शब्दों का लिबास नहीं है। मैं एक साधारण आदमी हूँ और इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबंधों की उलझनों को जीता और व्यक्त करता हूँ।'[1] इसी साधारण आदमी की अभिव्यक्ति को इन्होंने अपनी इस रचना में मूल्य-संघर्ष के माध्यम से व्यक्त किया है।

दुष्यंत कुमार बदलते परिवेश में सहज अभिव्यक्ति के गायक थे। इनका जन्म 1 सितम्बर 1933 तथा मृत्यु 30 दिसम्बर 1975 को हुई। 42 वर्ष के अपने अल्प जीवन में भी इन्होंने अतुलनीय साहित्य हिन्दी जगत को प्रदान किया। 'सूर्य का बसन्त', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का बसन्त (काव्य संग्रह), 'छोटे-छोटे सवाल', 'आँगन में एक वृक्ष, 'दूहरी जिंदगी' (उपन्यास), 'मन के कोण' (लघु कथाएं), 'साये में धूप' (गजल-संग्रह), 'एक कंठ विषपायी' (काव्य-नाटक) आदि।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

एक कंठ विषपायी में मूल्य-संघर्ष

दुष्यन्त कुमार की आलोच्य कृति 'एक कंठ विषपायी' मिथकीय आधार लेकर लिखी गई एक समय सापेक्ष रचना है। इसमें शिव और सती की पौराणिक कथा को आधुनिक परिवेश और समसामयिक संदर्भो में व्यक्त किया गया है। इसकी सम्पूर्ण कथा चार अंको में क्रमशः 'वीरिणी', 'सर्वहत', 'शंकर' तथा 'ब्रह्मा' में विभाजित है। मूल्य-संघर्ष की दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो इस काव्य नाटक को दो भागों में विभाजित कर सकते है, एक - जिसमें परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष, ह्रासोन्मुख जीवन मूल्य, सड़ी-गली जर्जर हो चुकी रूढ़ियों के प्रति मोह, नयी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष, वैचारिक मतभेद हैं तो दूसरी ओर सत्ताधीशों की राज्य लिप्सा, युद्ध की मनोवृत्ति युद्धोपरांत उपजी विभीषिका आदि का चित्रण है। इस प्रकार यह नाटक दो भिन्न-भिन्न धरातलों पर आधारित परम्पराग्रस्त तथा युद्ध की विभीषिका को प्रतीकात्मक रूप में प्रदर्शित करता है।

दुष्यन्त कुमार ने मिथकीय अवधारणा से युक्त अपने इस नाटक में प्रतीकात्मकता का अवलम्ब ग्रहण कर प्रतीक पात्रों के द्वारा सम्प्रति मूल्य संघर्षो को वाणी प्रदान की। नाटक का प्रारम्भ 'सती' के पिता 'प्रजापिता दक्ष' और माता 'वीरिणी' के मध्य हो रहे वार्तालाप से होता है। 'दक्ष' परम्परा से चली आ रही प्राचीन रूढ़ियों के पक्षधर हैं और पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। समयानुकूल होने वाले परिवर्तन को स्वीकार करना उनके लिए असंभव है। यही कारण है कि वे 'सती' और 'शिव' के 'प्रेम विवाह' को विवाह ही नहीं मानते। वे शिव को परम्परा भंजक के रूप में देखते हुए और इस विवाह को अपना अपमान समझते हुए कहते हैं -

"शंकर!
शंकर!!
वह, जिसने घर की परम्परा तोड़ी है,
वह, जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है,
जिसके कारण
मेरा माथा नीचा है सारे समाज में"[2]

भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कार स्वीकार किए गए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण संस्कारों में से एक है- 'विवाह' इसे यज्ञ के समान पवित्र माना गया है। समय-समय पर विवाह संस्कार की पद्धति में परिवर्तन होते रहे हैं। सती और शिव आधुनिक युगीन युवा-पीढ़ी के प्रतीक है। जिन्होंने स्वेच्छा से अपनी पसन्द से प्रेम-विवाह किया है। प्रजापिता दक्ष इस प्रकार के विवाह को अपने अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप मानते हैं, क्योंकि उनके अनुसार पुत्री का विवाह करना, उसके लिए योग्य वर का चयन करना पिता का अधिकार और कर्त्तव्य है। पिता अपने द्वारा चयनित वर से पुत्री का विवाह करता है। दक्ष इस बात को स्वीकार ही नहीं करना चाहते कि सती ने शिव का वरण किया होगा। वे इस वरण को शिव द्वारा किए गए अपहरण की संज्ञा देते हैं। वीरिणी के बार-बार समझाने पर भी दक्ष शंकर को अपना जामाता मानने के लिए तैयार नहीं होते। वे कहते हैं-

"उन दोनों ने केवल मेरी
बाहय प्रतिष्ठा खंडित की है,
उनकी आत्म-प्रतिष्ठा का भ्रम तोड़ूंगा मैं
यह यज्ञायोजन विराट
उनके अभाव का श्री गणेश है।"[3]

इस प्रकार प्रजापिता दक्ष अपने अपमान का बदला लेने तथा देव समाज में शिव की प्रतिष्ठा खंडित करने के लिए एक विराट यज्ञ का

आयोजन करते हैं। जिसमें सभी कैलाशवासियों को आमन्त्रित किया जाता है लेकिन शिव और सती को आमन्त्रित नहीं किया जाता।

इस स्थिति पर विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि वास्तव में यह संघर्ष केवल दक्ष, शिव और सती का ही नहीं है। यह संघर्ष प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं से चिपके रहने का है, नयी और पुरानी पीढ़ियों के बीच उग आए अन्तराल का है, नये के अस्वीकार और अपने अहंकार के जर्जर भवन में टिके रहने का है।

आधुनिक युग परिवर्तन का युग है। इसमें सब कुछ बड़ी तीव्रता के साथ बदल रहा है। मीडिया का प्रभाव, पाश्चात्य आकर्षण और भूमण्डलीकरण ने इसमें और तेजी ला दी है। युवा पीढ़ी की सोच और विचारों में भी परिवर्तन आ रहा है, किन्तु हमारी पुरानी या बड़ी पीढ़ी 'दक्ष' की तरह अपने विचारों और सोच में परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें 'शिव और सती का प्रेम विवाह' - अपनी प्रतिष्ठा का खंडन, जग हँसाई तथा बदनामी के समान महसूस होता है। और युवा पीढ़ी को प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा को खंडित करने का दोषी मानते हैं। इस भावात्मक संबंध को राजनीतिक रूप देकर दोषी को सजा देना अनिवार्य मानते हैं।

'वीरिणी' प्रजापति दक्ष की पत्नी तथा सती की माँ है। वह आधुनिक नारी का प्रतीक है जो समयानुरूप आए परिवर्तन को स्वीकार करने की पक्षधर है। उसमें स्वभाव की सरलता और मानवीय संवेदना की गहराई है। राजनीति से पहले मानवीय और लौकिक संबंधो को महत्व देती है। इसीलिए दक्ष को समझाती है कि हमें कई बार अपनी इच्छा के विरूद्ध भी ऐसे बहुत से कार्य करने पड़ते हैं जिनसे लौकिक मर्यादाओं का पालन होता है। फिर सती और शिव तो हमारे पुत्री और जामाता है। हमें अपने निजी संबंधों को राजनीति से अलग रखना चाहिए। वह स्पष्ट करती है कि सती द्वारा शिव का वरण किशोरावस्था का मात्र आकर्षण नहीं था, महादेवत्व का प्रभाव भी नहीं था अपितु सती ने शिव का वरण उनकी विशेषताओं से प्रभावित होकर और कठोर तप करने के पश्चात किया है। अतः दक्ष शिव से बैर मोल न लें। वह कहती है -

"आप बैर ठाने तीनों लोकों के साथ,
किन्तु शंकर से नहीं।
उनका आक्रोश वहन करने की
क्षमता त्रिलोक में नहीं है नाथ!
वे हैं साक्षात् ब्रह्मा...महादेव...."[4]

दक्ष को अपने 'अहंकार के धुंधलके' में और 'शिव से प्रतिशोध' की ज्वाला में कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसके लिए उसका अंहभाव, उसकी मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा ही सर्वप्रमुख है। अन्त में वीरिणी हताश होकर कहती है कि - 'सच ही है जब व्यक्ति के दुर्दिन आते हैं तो सबसे पहले उसका स्वातन्त्रय-बोध, चिंतन और बौद्धिक क्षमता सभी का नाश कर देते हैं। 'वीरिणी' का यह कथन नाटक में आगत घटनाओं की ओर संकेत है। सती अपने पिता दक्ष द्वारा आयोजित यज्ञ स्थल पर पहुंचती है किन्तु वहां अपने पति शिव (जो संसार में महा सत्य है, सारे ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि और स्वयंपूर्ण है) की अवहेलना, उपेक्षा देखकर देवों में उनके लिए कोई स्थान न पाकर अपने पति शिव के सार्वजनिक अपमान को सहन नहीं कर पाती तथा अपने पिता द्वारा बोले गए कुटिल, मानहानि पूर्ण, अशुभ वाक्यों के पाप से मुक्ति हेतु आत्मदाह कर लेती है। सती का पति के इस अपमान को देखकर लिए गए निर्णय में बाह्य-संघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक-संघर्ष

की पीड़ा अधिक थी। डॉ. वीणा गौतम के शब्दों में कहें तो - "इस नाटक की आधार भूमि बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अधिक है। इसमें अन्तर्जीवन की प्रधानता के कारण घटनाओं की तुलना में मनोभावों को अधिक बल प्राप्त हुआ है।"[5]

नाटककार दुष्यन्त कुमार ने जीवन के यथार्थ उद्घाटन के लिए इस पौराणिक कथा को नये संदर्भ में प्रस्तुत कर आन्तरिक मूल्य-संघर्षो को प्रतीकात्मक रूप में स्पष्ट किया है। इसके लगभग सभी पात्र (सर्वहत को छोड़कर) पौराणिक होते हुए भी एक नये भावबोध को वहन करते हैं। नाटक के विषय में बताते हुए नाटककार स्वयं कहते हैं कि -"...जर्जर रूढ़ियों और परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नए मूल्यों को संकेतित करते के लिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है।"[6]

स्वयं नाटककार दुष्यन्त कुमार के कथन से भी स्पष्ट है कि उन्होंने पौराणिक कथावस्तु के द्वारा मूल्य संघर्ष के उद्घाटन के लिए प्रतीक पात्रों का एकदम सही प्रयोग किया है। सत्य ही है कि परम्परा से बंधे हुए लोग नयी सोच नये विचार और नयी चिन्तनधारा को अपना नहीं पाते और अपनी हठधर्मिता के कारण सभी को विनाश की ओर ले जाते हैं। दक्ष द्वारा शिव की प्रतिष्ठा भंग करने के लिए 'यज्ञ का आयोजन', 'सती का आत्मदाह', शिव-गणों द्वारा यज्ञ-विध्वंस तथा उपस्थित देव व ऋषि समूह को हानि पहुंचाना इसी हठधर्मिता का फल है।

नाटक के प्रमुख पात्र शिव

शिव इस काव्य नाटक के प्रमुख पात्र हैं। सम्पूर्ण नाटक उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता है। नाटककार ने शिव के चरित्र का निर्माण दो विरोधी भावनाओं के समावेश से किया है। एक ओर वे आधुनिक युगीन युवा पीढ़ी के समान परम्परा भंजक के रूप में प्राचीनकाल से चली आ रही परम्परा का भंजन कर सती से प्रेम-विवाह करते हैं। दूसरी ओर सती के मोह के कारण उसके मृत शव को कंधे पर उठाए घूम रहे हैं। शिव का सती के मृत शरीर से प्रेम, वास्तव में आज के समय में व्यर्थ हो चुकी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं के प्रति मोह ही है। नाटककार इसके द्वारा स्पष्ट करते हैं कि मोह का यह आवरण व्यक्ति को सत्य तक नहीं पहुंचने देता, उसकी बौद्धिक क्षमता और चेतना को समाप्त कर देता है। ब्रह्मा जी, शिव के इस व्यवहार से परेशान हो कहते हैं-

"कैसी विडम्बना है
अपने बनाए हुए नियम
हमें डस गए
निर्माता निर्मिति के बन्धन में फंस गए।"[7]

'सर्वहत' इस नाटक का एकमात्र काल्पनिक पात्र है जो दुष्यन्त कुमार की वाणी को स्वर देता हुआ सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करता है। वह युद्ध के समय सामान्य जन और प्रजा की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है-

"शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना ही पड़ता है,
उसे गालित-मूल्यों का दंड भरना ही पड़ता है।
और मैं मनुष्य ही नहीं
मैं प्रजा भी हूँ।"[8]

नाटककार स्पष्ट करते हैं कि युद्ध सदैव विनाशकारी होते हैं इनका परिणाम सदैव हानिकारक और ध्वंसात्मक होता है। इसमें केवल जन-धन का ही नुकसान नहीं होता अपितु इससे सम्पूर्ण संस्कृति और सम्पूर्ण मानवता नष्ट हो जाती है। नाटककार स्पष्ट करते हैं कि जब व्यक्ति पर युद्ध का उन्माद छा जाता है तो वह

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आसुरी वृत्ति धारण कर लेता है। दक्ष ने भी यज्ञ का नहीं युद्ध का आयोजन किया था। युद्धोपरांत की वीभत्स स्थिति का वर्णन सर्वहत के द्वारा किया गया है -

"सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है,
और सड़ी हुई लाशें हैं
मुडी हुई हड्डियाँ हैं
और उन पर भिन्नाते हुए
चीलों और गिद्धों के झुण्ड
और मक्खियाँ हैं।
.....सिर्फ लोग नहीं हैं।"

वास्तव में यह स्थिति केवल दक्ष की नगरी की नहीं है। उस हर नगर, हर शहर, हर देश की हो जाती है जहाँ युद्ध का तांडव होता है। इसका जीवन्त उदाहरण रूस और युक्रेन के बीच युद्ध है। दुष्यन्त कुमार ने 'सर्वहत' को 'सामान्य-व्यक्ति' या 'प्रजा' का प्रतीक मान उसकी रचना की है लेकिन वह केवल एक प्रतीक नहीं प्रतीक-समूह बन जाता है। अलग अलग व्यक्तियों की दृष्टि में अलग-अलग रूप लिए है। 'सर्वहत' अपनी स्वयं की दृष्टि में 'मनुष्य ही नहीं प्रजा भी है। जो युद्ध से उत्पन्न मूल्य-संघर्षो की स्थिति को झेल रहा है। 'वरूण' उसे 'शंकर की हिंसा का जीवित प्रतिरूप मानते हैं, तो विष्णु उसे 'युद्धोपरांत उग आई संस्कृति के हृयसमान-मूल्यों का एक स्तूप मानते हैं।' इस प्रकार सर्वहत काल्पनिक पात्र होते हुए भी पौराणिक पात्रों के बीच में महत्वपूर्ण हो उठता है। वास्तव में वह आधुनिक युगीन मूल्य-संघर्ष की संवेदना का वाहक है।

निष्कर्ष

कह सकते हैं इस काव्य-नाटक के द्वारा नाटककार दुष्यन्त कुमार ने पौराणिक कथा को प्रतीक-पात्रों द्वारा आधुनिक परिवेश और आधुनिक सन्दर्भो में प्रस्तुत कर इसके द्वारा प्राचीन और नयी परम्पराओं के, पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच उत्पन्न मूल्य संघर्षो को अनुप्रणित किया है। नाटककार का मानना है कि पुरानी परम्परा के खण्डन के पश्चात् ही कोई नयी परम्परा जन्म लेती है। एक स्थिति से बाहर निकल दूसरी स्थिति को स्वीकारने में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती ही हैं। संक्षेप में कहें तो इस संक्रमणशील स्थिति से बाहर निकलने के लिए हमें विष्णु की तरह जर्जर रूढ़ियों से ग्रस्त परम्परा के शव को खण्डित कर मोह जाल को समाप्त करना ही होगा जिससे नये-नये मानवीय मूल्यों का अन्वेषण संभव हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 जलते हुए वन का बसन्त दुष्यन्त कुमार वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण: 1999, 'भूमिका से

2 एक कंठ विषपायी : दुष्यन्त कुमार, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (उ.प्र.), संस्करण: 2002, पृष्ठ 11

3 एक कंठ विषपायी, वही, पृष्ठ 15

4 एक कंठ विषपायी, वही, पृष्ठ 34

5 हिन्दी नाटक : आज तक, डॉ. वीणा गौतम, शब्द सेतु प्रकाशन, कबीर नगर, दिल्ली-110094, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ 224

6 एक कंठ विषपायी, दुष्यन्त कुमार, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (उ.प्र.) संस्करण: 2002, पृष्ठ - 'आभार कथा' से।

7. एक कंठ विषपायी, वही, पृष्ठ 59

8 एक कंठ विषपायी, वही, पृष्ठ 52

9 एक कंठ विषपायी, वही, पृष्ठ 58